"मैं तो मानव सेवा संघ के मंच को ऐसा मानता हूँ कि जहाँ पर एक अंग्रेज, एक अमेरिकन, एक रशियन, एक हिन्दू, एक बौद्ध, विभिन्न देशों, विभिन्न मतों के लोग एक साथ बैठे और जीवन के शुद्ध सत्य पर विचार कर सके - इस मंच को ऐसा सुरक्षित रखना है । इस मंच के माध्यम से किसी एक-देशीय साधना की चर्चा कभी नहीं की जाएगी ।"

- संतवाणी से

"सर्वमान्य सत्य" को देश, काल, मत, वर्ग, सम्प्रदाय, मझहब का भेद छू नहीं सकता है |"

आधुनिक युग के महामानव क्रान्तदर्शी सन्त
स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज

www.swamisharnanandji.org

निदेशिका

आजीवन कार्यकर्ता

मानव सेवा संघ

प्रकाशक :

मानव सेवा संघ,

वृन्दावन

निदेशिका

आजीवन कार्यकर्ता

मानव सेवा संघ

प्रकाशक :

मानव सेवा संघ,

वृन्दावन

मुद्रक—हर्ष गुप्त, राष्ट्रीय प्रैस, डैम्पियर नगर, मथुरा
फोन नं. १३७

प्रार्थना

(प्रार्थना साधक के विकास का अचूक
उपाय है तथा आस्तिक प्राणी का
जीवन है)

मेरे नाथ !

आप अपनी सुधामयी, सर्व-समर्थ, पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से, दुःखी प्राणियों के हृदय में
त्याग का बल एवं सुखी प्राणियों के हृदय में
सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-
दुःख के बन्धन से मुक्त हो, आपके पवित्र
प्रेम का आस्वादन कर कृत-
कृत्य हो जायें।

ॐ आनन्द ॐ आनन्द ॐ आनन्द

प्राक्कथन

दर्शन जिस सत्य का निरूपण करता है, वह सत्य मानव के जीवन में अभिव्यक्त होता है। इस दृष्टि से महत्त्व दर्शन का नहीं, जीवन में सत्य के साकार होने का है। किसी विचारधारा को सजीव बनाने के लिये जीवनदानी कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता रहती है। मानव-सेवा-संघ जिस मानव-हितकारी विचारधारा का प्रतीक है, उस विचारधारा से मानव अपने वर्तमान की रूढ़ियों से मुक्त होकर अपना कल्याण तथा सुन्दर समाज का निर्माण करने में स्वाधीनतापूर्वक आगे बढ़ सकता है। इस क्रान्तिकारी विचारधारा के द्वारा व्यक्ति में सोई हुई मानवता को जगाने वालो साधन-प्रणाली को सजीव बनाने एवं सुरक्षित रखने के लिए संघ के प्रवर्तक ने मानव-सेवा-संघ में जीवनदानी साधकों का आह्वान किया। उन्होंने स्पष्टतः देखा कि आजीवन कार्यकर्ता

बनने का व्रत लेने से साधक अपने उच्चतम विकास की ओर शीघ्र बढ़ सकता है। विकास के ऊँचे स्तर पर पहुँचे हुए साधकों के जीवन-रस से सिंचित होकर सर्वहितकारी मानव-सेवा-संघ सुरक्षित रह सकता है, और जिसके द्वारा आगे युगों-युगों तक मानव-समाज का मार्ग-दर्शन होता रहेगा।

मानव-समाज की उच्चकोटि की सेवा के लिये सदैव आतुर रहने वाले महामहिम सन्त की प्रेरणा से मानव-सेवा संघ में आजीवन कार्यकर्त्ता बनने की परम्परा का सूत्रपात हुआ। सर्वप्रथम १९५८ में एक साधक ने ऐसा विचार प्रकट किया कि जिस विचार-प्रणाली से मुझे जीवन मिला है, उसकी सेवा में जीवन लगाने की मेरी बड़ी उत्कण्ठा है। उसके हृदय के इस उद्‌गार को सुनकर परम कृपालु सन्त ने उसे मानव-सेवा-संघ के आजीवन कार्यकर्त्ता के रूप में स्वीकार कर लिया और संस्था में आजीवन कार्यकर्त्ता विभाग स्थापित हो गया। तब से अब तक अनेक उत्साही साधकों ने संघ की सेवा का व्रत लेकर इस विभाग को समृद्ध बनाया है। (विशेष जानकारी के लिये संघ के विधान को देखिये।) आगे चलकर इस विभाग को

वैधानिक रूप दे दिया गया। श्री महाराज जी ने आजीवन कार्यकर्त्ताओं को संघ की आधार-शिला कहकर प्राणपण से उनकी सेवा की, उन्हें प्रोत्साहन दिया, उनका पथ-प्रदर्शन किया और समय-समय पर होने वाली विभागीय बैठकों में आजीवन कार्यकर्त्ताओं को उद्‌बोधन दिया। आजीवन कार्यकर्त्ताओं के स्वरूप और कर्तव्य के विषय में उन्होंने जो कुछ कहा है वह मानव-सेवा-संघ और उसके आजीवन कार्यकर्त्ताओं के लिए Guide light है। वर्तमान और भावी आजीवन कार्यकर्त्ता इस Guide light से परिचित हो जायँ और उसके प्रकाश में चलते हुए अपने लक्ष्य तक निरापद पहुँच सकें, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रस्तुत संकलन प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें आजीवन कार्यकर्त्ताओं की जीवन-सम्बन्धी सारी बातें सिलसिलेवार आगई हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि श्री महाराज जी की सेवा में जब-जब इस विषय पर कुछ कहने की प्रार्थना की गई एवं प्रश्न रक्खे गये, तब-तब तत्काल जो भाव तथा विचार उनके हृदय में आये, उन्होंने प्रकट कर दिये और उन्हें लिपिबद्ध करने की चेष्टा की गई। उन्हीं के आधार पर यह संकलन तैयार करने की चेष्टा की गई है। फिर भी श्री महाराज जी द्वारा जो भाव एवं विचार प्रस्तुत हुये, वे आजीवन

कार्यकर्त्ताओं के जीवन-निर्माण के लिये अमोघ मन्त्र हैं। हम उन्हें अधिकाधिक जितना समझेंगे और अपने आचरण में लायेंगे, हमारा विकास उत्तरोत्तर उतना ही अधिक होगा, इसमें किंचित भी सन्देह नहीं।

वृन्दावन
१ मार्च, १९७६

विनीता
देवकी

आजीवन कार्यकर्त्ता—

स्वरूप एवं कर्तव्य

१—मानव सेवा संघ का आजीवन कार्यकर्ता वह है, जिसने अपना सर्वस्व संघ को समर्पित किया हो, यहाँ तक कि अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता भी। उसके जीवन में संन्यास का भी संन्यास हो। बलपूर्वक तप कराने की पद्धति मानव-सेवा-संघ को नहीं है, परन्तु विद्यमान राग की निवृति के लिये साधन-बुद्धि से जो सब कुछ करने के लिये सदैव तत्पर रहे, कभी हार न माने, जो संघ की सेवा करते हुये कभी थके नहीं और जो संघ के विधान तथा उसकी नीति का आदर करते हुये अपने निर्माण के लिये सतत् प्रयत्नशील बना रहे, वही संघ का आजीवन कार्यकर्ता है। ऊपर व्यक्तिगत स्वाधीनता के समर्पण की बात कही गयी है परन्तु इस प्रकार के समर्पण में पराधीनता नहीं है, केवल निर्मोही तथा दम्भरहित होने के लिये ही संघ के आजीवन कार्यकर्त्ता से इसकी अपेक्षा की है। आजीवन कार्यकर्त्ता के जीवन की सार्थकता तो अपने कल्याण और समस्त विश्व की सेवा करने में

ही है। यह आदर्श संन्यास से बहुत ऊँचा है। इस प्रकार संघ के आजीवन कार्यकर्त्ता पर केवल संस्था का ही नहीं, वरन् साधक के नाते, उस पर मानवमात्र का अधिकार है। सही माने में जिस दिन इस प्रकार के एक दर्जन भी कार्यकर्त्ता उपलब्ध हो जावेंगे उस दिन वे समस्त विश्व को सही मार्ग-दर्शन कराने में अवश्य ही समर्थ एवं सफल होंगे, इसमें रंच मात्र भी सन्देह की बात नहीं है।

२—संघ के आजीवन कार्यकर्त्ता की जिम्मेदारी है कि वह अपना पूरा समय संघ को विकसित तथा सुरक्षित रखने में लगावे। आजीवन कार्यकर्त्ता संघ की विचार-धारा का ही अनुयायी नहीं है, वह संघ का भी अनुयायी है। उसके जीवन में सबसे मुख्य बात यह रहनी चाहिये कि मुझे संघ को सुरक्षित रखना है और संघ सुरक्षित होगा आजीवन कार्यकर्त्ता के साधनयुक्त जीवन से।

३—आजीवन कार्यकर्त्ता मानव सेवा संघ का सेवक है, अर्थात् उस संघ का सेवक है जो सबका हितैषी है। सबकी हितैषिता परमात्मा का काम है। अतः संघ का सेवक परमात्मा का काम करता है।

मानव-सेवा संघ क्या है? वह साधकों का निज घर है। इस दृष्टि से मानव-सेवा-संघ का आजीवन-कार्यकर्त्ता साधकों के निज घर की सेवा करता है। सेवा करते हुये इस

बात का पूरा ध्यान रखना है कि उसके द्वारा जो भी सेवा बन पड़े उस सेवा से सेव्य पर सेवक की भलमनसाहत की छाप न पड़ जाय। उसे अपने आपको इतना निस्पृह बना लेना है कि जिसकी सेवा की जाय उसपर स्वयं सेवक की नहीं, बल्कि मानव सेवा संघ की छाप लग जाय।

४—संघ की सबसे बड़ी सेवा क्या है?

(क) अपना समय, शारीरिक और बौद्धिक बल संघ की सेवा में लगाना।

(ख) संघ की प्रवृत्तियों में कहीं नीति का उल्लंघन न हो जाय, इस बात पर सावधानीपूर्वक सदैव निरीक्षण करते रहना।

(ग) कार्य-निपुणता के साथ सेवक और सेव्य के मोह-रहित होने की बात पर विशेष ध्यान रखना।

(घ) संघ से आत्मीयता का भाव रखना।

(ङ) संघ की संपत्ति सुरक्षित रखने की बात पर पूरा ध्यान देना।

(च) सेवा-प्रवृतियों में पूजा और कर्तव्य का भाव रखना। सेवा के व्रत में यह तथ्य प्राणस्वरूप है कि सेवक अपना कोई भी अधिकार, न रक्खे। मानव सेवा संघ की सेवा-प्रणाली में अपना सुख बाँटने का प्रश्न है, दूसरे का दुःख दूर करने का दावा नहीं है। सेवक में

सुख की वासना न रहे, उसे कीर्ति पाने के लालच से भी मुक्त ही रहना चाहिये।

५—आजीवन कार्यकर्त्ता साधक है। संघ जो प्रेरणा मानव-समाज को देता है, उसी का मूर्तिमान चित्र है—आजीवन कार्यकर्त्ता का स्वयं का जीवन। आजीवन कार्यकर्त्ता को इस नीति में दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि मानव अपने विकास में सर्वथा स्वाधीन है। जिसको इस बात में विश्वास नहीं हैं, वह तो संघ का सदस्य भी होने का अधिकारी नहीं, आजीवन कार्यकर्त्ता पद तो बहुत ऊँचा है।

६—आजीवन कार्यकर्ता का अर्थ है, संघ की खाद बन जाना। उसके लिये सबसे बड़ी जरूरत है कि साधक को सेवा के लिये अपमान, भूख और असुविधा सहन करने में भी सम्मान, सुख और सुविधा के समान ही हर्ष हो। संघ की सेवा जिसे अभीष्ट है उसे अपनी सुख-सुविधा अभीष्ट नहीं हो सकती।

७—एक प्रतिशत भी जिनके मन में ऐसा भाव आता हो कि हम मानव-सेवा-संघ के बिना रह सकते हैं उनसे संघ का काम नहीं होगा। जिनको मानव-सेवा-संघ की अनिवार्यता मालूम होती हो इसलिये कि संघ के माध्यम से भिन्न-भिन्न मत और विचार के लोग एक साथ मिल-

बैठकर विचार-विनिमय कर सकते हैं, मत-मतान्तर की भेद-सीमाओं को पार कर विश्व-जनीन सत्य को अपना कर स्वाधीनतापूर्वक चिन्मय रसरूप जीवन को पा सकते हैं ऐसे उदारचेता साधक ही मानव सेवा संघ के आजीवन कार्यकर्ता हो सकते हैं, और ऐसे ही साधक संघ को, मानव-हितकारी होने के नाते सजीव और सबल बनाने एवं बनाये रखने में प्राणों की बाजी लगा सकते हैं।

८—संघ का आजीवन कार्यकर्ता बिना देश, काल और व्यक्ति के भेद के, साधकों की सेवा का व्रत लेता है, उसे इस बात से कोई मतलब नहीं है कि साधक किस देश, किस मजहब और किस जाति का है। उसकी सेवा तो साधक मात्र के लिये समर्पित है। उसके जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही आचरणीय हैं। उसकी उदारता, साहस और वीरता असीम, अथक और अदम्य है। संघ ही उसका घर है और संघ ही उसका परिवार; यद्यपि वह सबसे असंग रहते हुए प्राणिमात्र की सेवा के लिये समर्पित है। इस प्रकार के साधकों को तैयार करना ही आजीवन कार्यकर्ता तैयार करना है।

९—संघ की सेवा का अर्थ है कि मानव-समाज में एक ऐसी क्रान्ति पैदा हो जाय कि उसके प्रकाश में सभी व्यक्ति समाज में अपनी-अपनी जगह पर ठीक हो

जायँ। संघ की सेवा का अर्थ है कि मानव मानव होने के नाते, अपना सही मूल्यांकन करने में समर्थ हो जाय। व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में इस प्रकार की जागृति लाने की सेवा आजीवन कार्यकर्ता को करना है।

१०—संघ के जो सेवक हैं, उनमें संघ का प्यार अपने शरीर से कम न हो। जो अपमान सहकर, भूख सहकर संघ का काम करता रहे, उसी के द्वारा संघ की सेवा बन सकती है। आजीवन कार्यकर्ता में संघ का इतना प्यार हो कि व्यक्तिगत सिद्धि का प्रश्न आवे, तो उसे भी ठुकरा कर संघ का कार्य करते रहना प्रिय लगे। आजीवन कार्यकर्ता का अर्थ इतना ही नहीं है कि वह शान्ति और मुक्ति लेकर रहना पसन्द करे; उसे तो संघ का सेवक होना है, संघ की विचारधारा को अपने जीवन द्वारा पोषित करना है, इस विश्वास के साथ कि इसकी छाया में मानव-समाज विश्राम पायेगा।

११—संघ की स्थापना में यह गहरी व्यथा है कि आज आदर-प्यार देने वाला कोई नहीं मिलता है। बिना सम्बन्ध जोड़े हम सभी को आदर-प्यार दे सकें, इसी के लिये मानव-सेवा-संघ है और इसका मूर्तिमान रूप है–संघ का आजीवन कार्यकर्त्ता। उसके जीवन में भय और प्रलोभन नहीं रहना चाहिये। विचार-भेद होने पर भी

प्रीति की एकता सुरक्षित रखना उसका सहज स्वभाव होना चाहिये।

१२—आजीवन कार्यकर्त्ता के सामने जोरदार प्रश्न है कि संघ के जो मूल सिद्धान्त हैं, उनके अनुसार वह अपने जीवन को ढाले—जैसे शासन न करना, अपने जीवन में गुरुत्व और नेतृत्व की भावना न लाना आदि। संघ के आजीवन-कार्यकर्त्ता की दृष्टि इस बात पर रहनी चाहिये कि वह प्रीति बनकर रहे। हृदय में करुणा और प्रसन्नता रक्खे; नेता, गुरु और शासक अपना बने, दूसरों का नहीं; क्योंकि अपने पर अपना नेतृत्व, गुरुत्व और शासन रखने से अपना विकास होता है। दूसरों का नेतृत्व, गुरुत्व और शासन करने से अपना विकास नहीं होता और जिस बात से अपना ही विकास नहीं होता, उससे अन्य का भी विकास नहीं हो सकता।

१३—मानव-सेवा-संघ के अनुयायी के लिये जीवन के इस सत्य को स्वीकार करना अनिवार्य है कि किसी के ह्रास में अपना विकास मानना बड़ी भारी भूल है। आजीवन कार्यकर्त्ता को परसेवा के लिये स्वयं संघ की खाद बन जाना है।

१४—आजीवन कार्यकर्त्ता के सामने मूल प्रश्न है कि उसके स्वयं के जीवन में असाधन न आ जाय। बहुत ही

सरलता तथा ईमानदारी की आवश्यकता है। आजीवन-कार्यकर्त्ता साधक है, सिद्ध नहीं। उसे अपनी निर्बलता को देखना चाहिये और उसे छोड़ना चाहिये।

१५—आजीवन कार्यकर्त्ता को त्याग को अपनाकर त्याग के अभिमान से, सेवा को अपनाकर उसकी फलासक्ति से और प्रेम को अपनाकर प्रेमी होने के भाव से मुक्त हो जाना है। यह तभी संभव होगा जब यह अनुभव किया जाय कि बल अपने लिये नहीं है अपितु पर के लिये है, ज्ञान अपने लिये है और प्रेम प्रभु के लिये है। इस सत्य से जीवन को अभिन्न करना है। भूतकाल की भूल से भयभीत होकर निराश नहीं होना है, अपितु वर्तमान निर्दोषता के आधार पर अभय हो जाना है। जो भय-रहित हो जाता है उससे किसी को भय नहीं होता। वह सभी का अपना हो जाता है और सभी उसके अपने हो जाते हैं, अर्थात् मानव-सेवा-संघ के आजीवन कार्यकर्ता का विश्व और विश्वनाथ से अविभाज्य सम्बन्ध है और सेवा, त्याग, प्रेम उसका सहज स्वभाव है जो सभी को अभीष्ट है।

आजीवन कार्यकर्त्ता को यह भलीभाँति अनुभव करना है कि अल्प सामर्थ्य से विकास में कोई बाधा नहीं होती, अपितु पवित्र भाव से प्राप्त सामर्थ्य के सदुपयोग से सभी

का सर्वतोमुखी विकास होता है। यह बड़ा ही अनुपम, अलौकिक विधान है। इस प्रकार उसे यह मान ही लेना चाहिये कि अपने लिये उपयोगी होकर वह सभी के लिये उपयोगी होने का दायित्व पूरा कर सकता है और जो अपनी सहायता करता है उसके लिये जगत् और जगत्-पति दोनों ही अनुकूल हो जाते हैं। इस वास्तविकता में आस्था करने और लक्ष्य पर दृढ़ रहने से सफलता अवश्यम्भावी है।

१६—संघ का आजीवन कार्यकर्त्ता होना आधुनिक युग का संन्यास है। संन्यास की परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त यह संन्यास अलिंग संन्यास है। इसका अर्थ है अधिकार छोड़कर काम करना और अपना करके कुछ नहीं है—इस सत्य को स्वीकार करना। मानव सेवा संघ का जो आजीवन कार्यकर्त्ता है उसमें इन दोनों बातों का होना अनिवार्य है। इस दृष्टि से वह अलिंग संन्यासी है।

आजीवन कार्यकर्त्ता अलिंग संन्यासी है, वीतराग है, विश्व का हितैषी है। जिसकी यह भी हिम्मत न हो कि अपने निर्वाह पर कम खर्च करके, अपने से अधिक जरूरतमन्द की मदद करे, वह क्या आजीवन कार्यकर्त्ता है? मैं औरों से अच्छा हूँ, दूसरे मुझसे बुरे हैं, साधक की

ऐसी भावना ही नहीं होनी चाहिए। आजीवन कार्यकर्त्ता के जीवन से निर्दोषता एवं निरभिमानता की सुगंधि आनी चाहिए।

१७—प्रत्येक आजीवन कार्यकर्ता को व्रत लेते समय अपने सम्बन्ध में यह भलीभाँति देख लेना चाहिये कि उसे अपने विकास के साथ-साथ संघ की सेवा भी अभीष्ट है कि नहीं। यदि ये दोनों बातें उसकी दृष्टि में हैं तभी वह सफल आजीवन कार्यकर्त्ता हो सकता है।

१८—संघ की सेवा करने में सेवक को चाहिये कि वह संघ के विधान का ईमानदारी से आदर करे। संघ की नीति में किसी व्यक्ति पर अपने नेतृत्व एवं गुरुत्व की छाप लगा देना बड़ा ही अनर्थकारी है। इसके विपरीत व्यक्ति को उसके अपने ही सत्य पर विश्वास दिला देना सही सेवा है, जिससे वह स्वाधीनतापूर्वक आगे बढ़कर अपने लक्ष्य तक पहुँच जाय। संघ की प्रेरणा है कि प्रत्येक व्यक्ति वही कर सकता है जो उसमें मौजूद है। अतः उसके स्वयं के व्यक्तित्व में अन्तर्दृष्टि दिला देना सेवक का मुख्य काम है। यही विकास का मूल मंत्र है। बाहर से भरी जाने वाली बातों से कभी किसी का विकास नहीं होता। यह तथ्य मानव सेवा संघ की शोध है। इसी आधार पर मानव-सेवा-संघ साधक-जगत को प्रेरित करता है कि वह

अपनी आँखों देखे और अपने पैरों चले। साधक-समाज को विकास के पथ में स्वावलम्बी बना देना उसकी सबसे ऊँची सेवा है। आजीवन कार्यकर्त्ता को सँघ की इस प्रेरणा के अनुसार चलकर अपना विकास और संघ का कार्य करना है।

१९—यह भी देखना है कि सेवा करने से यदि साधक का अपना हित नहीं हो रहा है तो समझना चाहिये कि सेवा-कार्य में अवश्य ही कहीं कोई त्रुटि है। इस त्रुटि को दूर करना ही होगा। सेवा-कार्य सही होने का अर्थ है कि सेवक का हित हो तथा सेव्य में सेवा का भाव उत्पन्न हो जाय। सेवा-कार्य करने में सम्मान मिले अथवा अपमान, सेवक को अपना सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है।

२०—संघ की नीति के अनुसार आजीवन कार्यकर्त्ता को इस निश्चय पर दृढ़ रहना है कि भूल कितनी ही बार क्यों न हो जाय, वर्तमान सदा निर्दोष है, इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं खोऊँगा। किसी भी कारण से विकास से निराश न होना आजीवन कार्यकर्ता का विशिष्ट गुण होना चाहिए।

—❖—

आजीवन कार्यकर्ताओं के संबंध में प्रश्न
और
श्री महाराज जी के उत्तर

प्रश्न—आजीवन कार्यकर्त्ता बनने की विधि क्या है ?

उत्तर—जो साधक संघ का आजीवन कार्यकर्त्ता होना चाहता है उसे पहले संघ के स्थायी साधकों की श्रेणी में प्रवेश करना होगा। स्थायी साधक ही कालान्तर में आजीवन कार्यकर्त्ता हो सकता है। कारण कि स्थायी साधक वह है जो संघ की विचारधारा द्वारा अपने साधन का निर्माण करे और उसे यह विश्वास हो जाय कि यह जीवनोपयोगी विचारधारा है। आजीवन कार्यकर्त्ता वह है जो इस विचारधारा के प्रतीक स्वरूप संस्था की सेवा में लग जाय। इसका यह अर्थ नहीं है कि संघ की दृष्टि में स्थायी साधक का महत्व कुछ कम है, लेकिन विचारधारा के प्रचार की दृष्टि से आजीवन कार्यकर्त्ता को संघ की सेवा का व्रत लेना अनिवार्य है। स्थायी

साधक न हो और आजीवन कार्यकर्त्ता बनना चाहे और कहे कि हम खूब काम करेंगे, तो वह संघ के लिये अधिक मंगलकारी नहीं है और न उसका ही विशेष हित हो सकता है, क्योंकि काम तो बहुत से लोग करते रहते हैं। किन्तु स्थायी साधक होकर आप काम करें तो 'अपना कल्याण और सुन्दर समाज का निर्माण' मानव सेवा संघ का जो उद्देश्य है, वह अधिक सुगमता से पूरा हो सकेगा। स्थायी साधक हुए बिना संघ की सेवा करने की सोचेंगे तो फार्म भी भरा रहेगा, काम भी करते रहेंगे पर बहुत, करके उनका स्वयं का कल्याण नहीं होगा। और जिस कार्य से करने वाले का ही कल्याण न हो, उससे संस्था का विकास होगा, यह सम्भव नहीं है।

प्रश्न—स्थायी साधक की पहचान क्या है ?

उत्तर—मेरी राय में स्थायी साधक वह है जिसका मानव सेवा संघ की प्रणाली के अनुरूप पूरा जीवन साधन हो जाय। स्थायी साधक सत्संग के द्वारा साधन का निर्माण करता है। जो किसी अभ्यास विशेष के द्वारा साधन का निर्माण करता है, वह मानव सेवा संघ का स्थायी साधक नहीं है। स्थायी साधक का पूरा जीवन ही साधन होना चाहिये।

प्रश्न—पूरा जीवन साधन होने का क्या अर्थ है ?

उत्तर—हम इस सत्य को स्वीकार करें कि शरीर विश्व के काम आ जाय, अहम् अभिमान-शून्य हो जाय, हृदय प्रेम से भर जाय। यह स्थायी साधक का लक्ष्य है और यह सत्संग से ही संभव है, अभ्यास के द्वारा नहीं। सत्संग का जो मूल आधार है, वह विचार और विश्वास है, अभ्यास नहीं है। विश्वास क्या है ? हमारा और भगवान का जातीय सम्बन्ध है, आत्मीय सम्बन्ध है। विचार क्या है ? शरीर और संसार का जातीय सम्बन्ध है, मन-वाणी-कर्म से बुराई-रहित होने से विकास होता है, उदार होने से विकास होता है, स्वाधीन होने से विकास होता है—यह विचार से सिद्ध है। और विश्वास से भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है—यह विश्वास से सिद्ध है। जगत के नाते सभी को अपना मानें, स्वाधीन होने के लिये अकिंचन और अचाह हो जायँ और प्रेमी होने के लिये प्रभु को अपना मानें। जब तक साधक उदार नहीं हो जाता, स्वाधीन नहीं हो जाता और प्रेम से परिपूर्ण नहीं हो जाता तब तक उसे साधननिष्ठ नहीं कहा जा सकता। अतः साधननिष्ठ होने के लिए हममें उत्कट लालसा होनी चाहिये। इस बात का अथक प्रयास करना चाहिये कि मैं किसी न किसी नाते सभी को अपना मानूँगा और इस सत्य में अविचल आस्था रखूँगा

कि मेरा करके कुछ नहीं है और केवल प्रभु ही मेरे अपने हैं। जगत के नाते सभी को अपना मानो, आत्मा के नाते सभी को अपना मानो, अथवा प्रभु के नाते सभी को अपना मानो,यह तो आपकी व्यक्तिगत स्वाधीनता है, मानव सेवा संघ के सिद्धान्त में इसका विरोध नहीं है। इससे यह नहीं समझा जायेगा कि आप मानव सेवा संघ के साधक नहीं हैं। आपमें परमात्मा को अपना मानने की आस्था नहीं होती है तो मत मानिए—अपने को अपना मानिये, अपने नाते सभी के लिए उदार हो जाइये और जगत के नाते से भी उदार होना चाहिये, क्योंकि उदार होना ही है, स्वाधीन होना ही है। परमात्मा की यह महिमा मैंने देखी है कि जो अपने को मानकर चलता है उसे भी वे प्रेम प्रदान करते हैं। वह प्रेम प्रारम्भ में आत्मरति के रूप में मालूम होता है और अन्त में वही प्रेम अनंत हो जाता है। ऐसे ही जो भौतिकवादी हैं उन्हें भी प्रभु प्रेम प्रदान करते हैं और जो ईश्वरवादी हैं उन्हें भी वे प्रेम प्रदान करते हैं। कुछ लोग प्रेम से आरम्भ करके उदार और स्वाधीन होते हैं, और कुछ लोग उदार और स्वाधीन होकर प्रेम को प्राप्त करते हैं। मानव सेवा संघ के सिद्धान्त के अनुसार साधना की जो अन्तिम परिणति है, वह है–प्रेम। वह प्रेम कभी पूर्ण होता नहीं, कभी घटता नहीं। साधना की पूर्णता यह है कि साधक का

जीवन प्रेम से परिपूर्ण हो जाय। आप देखेंगे कि जिसके जीवन में प्रेम होता है, उसके व्यवहार में भी प्रेम आ जाता है, उसे क्षोभ नहीं होता, क्रोध नहीं आता। साधक के जीवन में प्रेम की प्रधानता होनी चाहिये। प्रेम की पूर्णता में ही जीवन की पूर्णता है। यह बात मानव-मात्र के लिये है। इसको स्थायी साधक बनकर पूरा करो अथवा आजीवन कार्यकर्त्ता बनकर। इस प्रकार मानव सेवा संघ का स्थायी साधक भी व्यक्तिगत साधना में पूर्णता तक पहुँचकर कृत-कृत्य हो सकता है। उसके विकसित जीवन से भी जन-समाज की सेवा स्वतः होती रहेगी। इस दृष्टि से मानव सेवा संघ का स्थायी साधक होना भी अपने आप में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। फिर भी आजीवन कार्यकर्त्ता होना अधिक महत्त्व की बात है, क्योंकि आजीवन कार्यकर्त्ता स्थायी साधक की सभी शर्तों को पूरा करते हुए, अर्थात् सम्पूर्ण जीवन को साधनमय बनाते हुए, इस व्रत का व्रती बनता है कि वह तन, मन, धन से आजीवन मानव सेवा संघ की सेवा करता ही रहेगा; अन्तिम साँस तक भी यदि संघ की कुछ सेवा कर सकेगा तो अवश्य करेगा।

अपने को आजीवन कार्यकर्त्ता मानकर आजीवन कार्यकर्त्ता न रहना, बड़े दुःख की बात है। जैसे संन्यास लेकर संन्यास-धर्म से जीवन को शून्य रखना बड़ा भारी

पतन माना जाता है, ऐसे ही अपने को आजीवन कार्यकर्त्ता मानते हुए भी आजीवन कार्यकर्त्ता के व्रतों का पालन न करना अपने ही उत्थान से विमुख हो जाने के समान है। जो अपने ही उत्थान से विमुख हो जाय, उसके द्वारा मानव-समाज की कोई सेवा नहीं हो सकती।

संघ की यह नीति ही नहीं है कि आप संघ की सेवा करते हैं तो बड़े अच्छे आदमी हैं और नहीं करते तो अच्छे आदमी नहीं हैं। यदि आप संघ की सेवा करते हैं और सोचते हैं कि इससे मेरी अधिकार-लोलुपता पूरी हो जाय, तो ऐसा सोचना साधक का लक्षण ही नहीं है। इसीलिए दुःखी होकर यह कहा गया कि तुम संघ की सेवा करो अथवा मत करो, पर स्थायी साधक तो बनो।

जो अपने पर सभी का अधिकार मानता है और अपना अधिकार किसी पर भी नहीं मानता, वही स्थायी साधक हो सकता है, या आजीवन कार्यकर्ता हो सकता है जो इस सिद्धान्त को ठुकराता है, अथवा पसन्द नहीं करता, वह न स्थायी साधक है और न आजीवन कार्यकर्त्ता। मेरी राय में तो वह सही अर्थ में साधक होने का भी अधिकारी नहीं हो सकता।

जो अपना अधिकार छोड़ कर दूसरों के अधिकार की रक्षा नहीं करेगा, वह न धर्मात्मा हो सकेगा,

न जीवन-मुक्त और न भगवद्भक्त ही। अधिकार-लोलुपता का त्याग साधक मात्र के लिये जरूरी है। आजीवन कार्यकर्त्ता को यह नहीं सोचना चाहिये कि वह पद लेकर ही सेवा करे। सेवक में सेवा-भाव की प्रधानता रहनी चाहिये। उसे बिना पद लिये सेवा करने के लिये तत्पर रहना चाहिये। उसको इस बात के लिये भी तैयार रहना चाहिये कि जब तक मुझसे अधिक योग्य व्यक्ति पद का दायित्त्व संभालने को नहीं मिलेगा, तभी तक पद लेकर सेवा करूँगा। साधक में इस तरह की भावना अगर आ जाय तो वह मानव सेवा संघ का सबसे अच्छा कार्यकर्त्ता है।

प्रश्न—मानव सेवा संघ का स्थायी साधक कौन कहलायेगा ?

उत्तर---जिसको विश्वास है कि संघ की पद्धति से ही मेरा कल्याण होगा।

प्रश्न—घर छोड़कर आश्रम में रहना क्या उसके लिये जरूरी है ?

उत्तर—आजीवन कार्यकर्त्ता के लिए यह बिलकुल जरूरी है।

प्रश्न—आजीवन कार्यकर्त्ताओं के लिये आचरणीय व्रत-नियमादि की भाँति क्या स्थायी साधकों के लिये भी नियमादि बनाना आवश्यक है ?

उत्तर—इस सम्बन्ध में मुख्य रूप से विचारणीय बात यह है कि अपनी ओर से व्रत-नियम बनाकर साधकों को उन्हें मानने के लिये विवश करना मानव-सेवा-संघ की साधन-पद्धति ही नहीं है। क्योंकि साधन में निष्ठा और प्रियता साधक की निजी प्रेरणा से ही सम्भव है। यही कारण है कि मानव-सेवा-संघ जीवन के चिरन्तन सत्य को साधकों के सामने रखता है और स्वाधीनतापूर्वक उसपर चलने की प्रेरणा की पद्धति को महत्त्व देता है। परन्तु साथ ही इस बात को भी भलीभाँति समझ लेना है कि यह व्रत-नियम-निरपेक्ष स्वतन्त्रता केवल व्यक्तिगत साधन-क्षेत्र के लिये ही सीमित है अर्थात् यह आपकी मर्जी पर है कि आप अपनी निष्ठा के अनुसार जगत की सत्ता स्वीकार करें, चाहे आत्मा की और चाहे परमात्मा की, परन्तु जहाँ संस्था को विकसित एवं सुश्रृंखलित बनाने तथा सामूहिक जीवन के सुन्दर संचालन के लिये अनुशासन का प्रश्न है, वहाँ मनमानी करने के लिये कोई स्थान ही नहीं है। अतः न करने वाली बात किसी भी साधक को कभी किसी भी मूल्य पर नहीं करना है। मानव-सेवा-संघ के स्थायी साधक के लिये यह अनिवार्य है कि वह संघ की इस साधन-प्रणाली में दृढ़ आस्था रखे कि साधन का निर्माण सत्संग से होता है, अभ्यास से नहीं। सत्संग का अर्थ है जीवन के सत्य को स्वीकार

करना और जीवन का सत्य है—[क] किसी न किसी नाते सभी को अपना मानना [ख] किसी पर अपना अधिकार न मानना [ग] प्रेम के लिये प्रभु को अपना मानना। ये मानव-जीवन के मौलिक सत्य हैं। जो साधक सच्चाई से इन्हें स्वीकार करेगा वह अवश्य ही अपने कल्याण तथा सुन्दर-समाज के निर्माण में सफल होगा।

प्रश्न—यदि कोई साधक घर पर रहते हुए पुराने ढर्रे से साधन करे और कहे कि मानव-सेवा-संघ के स्थायी साधक के व्रतों को मानता हूँ, तो क्या हमें उसको स्थायी साधक मान लेना चाहिये ?

उत्तर—जरूर मान लेना चाहिए, यदि वह ईमानदारी से ऐसा कहता है कि सत्संग के द्वारा मेरे साधन का निर्माण हो गया, मुझे उदारता प्राप्त हो गई, प्रेम प्राप्त हो गया।

प्रश्न—इस प्रकार के साधक को अपने बाहरी रहन-सहन को बदलना भी क्या जरूरी है ?

उत्तर—बहुत जरूरी है और स्वाभाविक भी, परन्तु यह परिवर्तन अपनी मर्जी से ही होना चाहिए। उसे बदलना ही पड़ेगा। वह तो बदलेगा ही, अपने आप ! जिसके हृदय पर संघ की छाप लगी है कैसे रहा जायेगा उससे बिना बदले। परन्तु इसके लिए उस पर कोई जोर

न डाला जाय। जोर डालकर परिवर्तन लाना मानव सेवा संघ की पद्धति नहीं है।

प्रश्न—मानव-सेवा-संघ के आजीवन कार्यकर्त्ताओं की अब केवल प्रथम श्रेणी ही रह गई है। अतः पुराने द्वितीय व तृतीय श्रेणी के साधकों को अब क्या माना जायेगा ?

उत्तर—इनको अब स्थायी साधक मान लिया जाय। चाहे वे आश्रम में आकर रहें अथवा न रहें, पैसा दें अथवा न दें। देखिये पैसे और श्रम के द्वारा बहुत सी चेष्टायें दम्भ-पूर्वक भी होती हैं। इसीलिए मैं ऐसा सोचता हूँ कि इस पद्धति के प्रति जिसके हृदय में स्थायी श्रद्धा जग जायेगी उसके जीवन में परिवर्तन आये बिना रहेगा नहीं। 'आपको यह करना ही चाहिए', मानव सेवा संघ ने ऐसा कभी नहीं कहा। परन्तु जो साधक आत्म-निरीक्षण करते हुए, दैनिक डायरी लिखेगा, मानव सेवा संघ के नियमों के अनुसार अपने जीवन को ढालेगा, उसका कल्याण तो हो ही जायेगा।

प्रश्न—यदि किसी साधक के जीवन में साधन के प्रति शिथिलता अथवा उदासीनता आती जाय तथा चेतावनी देने पर भी कोई फल न निकले, तब भी क्या उसे स्थायी साधक माना जाता रहे ?

उत्तर—उसे चेतना देते रहो कि आप अपने पथ से भटक रहे हैं, नीचे गिर रहे हैं। उसको बताते रहो। सावधान करते रहो।

प्रश्न--संस्था का बाहरी रूप (Organization) आश्रम है। उसपर यदि कभी सङ्कट आ जाय तो आजीवन कार्यकर्त्ता का उस सङ्कट-काल में क्या कर्तव्य है ?

उत्तर—उसे कर्तव्य बताया जाय, तब वह कार्य करे—यह संघ की पद्धति ही नहीं हैं। उसके पूछने पर ही, उस दिशा में परामर्श दिया जाय। बिना पूछे बताने पर तो वह मानेगा नहीं।

प्रश्न--वर्तमान में आश्रम का जो आर्थिक संकट है, उसके निवारण के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—मैंने आपको बता ही दिया कि जब इसका दर्द बढ़ जाय तो जाओ, भीख माँगो और काम करो।

प्रश्न—कल एक भाई ने प्रश्न किया—हम कार्यकारिणी के सदस्य हैं और वैधानिक रूप से हमने आजीवन कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकतायें पूरी करने की जिम्मेदारी ली है। वर्तमान परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिए ?

उत्तर—हमको यह नहीं सोचना है। ईमानदारी से पूरी शक्ति लगाकर मैंने तुम लोगों की सेवा की। मुझे

सोचना नहीं पड़ा कि मुझपर जिम्मेदारी है। आजीवन कार्यकर्त्ता की सेवा करनी चाहिए, यह सोचने की बात है। परन्तु आर्डर नहीं दिया जा सकता, कि सोसाइटी को ऐसा करना ही है। वह तो आजीवन कार्यकर्त्ता ही नहीं है जो कहे कि मेरी रोटी का प्रबन्ध करोगे, तो सेवा करूँगा। आजीवन कार्यकर्त्ता की सबसे बड़ी बेइज्जती इस बात में है कि वह अपनी सुविधा को सामने रखकर काम करे, सुविधा की माँग करे। आजीवन कार्यकर्त्ता जीवनमुक्त है, भगवद्भक्त है। संघ पर आजीवन कार्यकर्त्ता की सेवा की जिम्मेदारी है परन्तु इस बात को प्रस्ताव में नहीं लाना है। लालच देकर हमें आजीवन कार्यकर्त्ता को आगे नहीं बढ़ाना है, वैसे उसकी सेवा जरूर करनी है।

प्रश्न—अलिंग संन्यासी का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(१) जिसमें अपने अधिकार की गंध भी न हो। (२) जिसमें की हुई सेवा का अहं न हो और फल की आसक्ति भी न हो। (३) आजीवन कार्यकर्त्ता की भावना ऐसी रहे कि बिना सेवा के मैं रह नहीं सकता, इसीलिए मैं सेवा करता हूँ। संघ अगर मेरी सेवा स्वीकार करता है तो मैं उसके लिए इस बात का आभारी हूँ कि उसने मेरी सेवा स्वीकार की।

प्रश्न—संघ के हम सब जितने भी आजीवन कार्य-कर्त्ता हैं–चाहे जिस रूप में आपने उन्हें स्वीकार किया, और उनकी साधना की पूर्णता की दिशा में सहयोग प्रदान किया, उनका अपनेपन के साथ समय-समय पर आन्तरिक एकता की वृद्धि की दृष्टि से मिलना नहीं हो पाता, तब क्या इसके लिए कोई रुटीन (Routine) बनाया जाय ?

उत्तर—रुटीन मत बनाओ। प्रेरणा के रूप में रखो, प्रार्थना करते रहो। आजीवन कार्य-कर्त्ता समिति के चेयर-मैन का कर्त्तव्य है कि वह प्रेरणा दे, परन्तु रुटीन न बनाये।

प्रश्न—भावी कार्यकर्त्ताओं को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—उन्हें अपना समय, शक्ति आदि सबको साधन-निर्माण में लगाना चाहिए।

प्रश्न—किस प्रकार ?

उत्तर—वे वृन्दावन आश्रम में आकर बैठें। जरूरी काम पूरे होते हैं, मांग पूरी होती है, यह संघ का मूल-मन्त्र है। इस पर अमल करो। सम्मान के लिए की जाने वाली सेवा पर पैर रख दो।

प्रश्न--स्थायी साधक और वानप्रस्थी को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—सेवा, सार्थक चिन्तन, जितेन्द्रियता ये सब उसे करना चाहिये, जिसे स्थायी साधक बनना है। अपने कल्याण की बात मुख्य है, परन्तु साधन-निर्माण के साथ-साथ उसे सेवा भी करनी चाहिए। स्थायी-साधक का मतलब है कि जो इन्द्रिय-लोलुपता से जितेन्द्रियता की ओर और स्वार्थ-भाव से सेवा की ओर गतिशील होता जाय। जीवन की पूर्णता के लिए उसके मन में यह वेदना उठती रहे—हाय ! आगे कैसे बढ़ूँ ? जिसको अपना कल्याण अभीष्ट नहीं है, जो इसके लिए अथक प्रयत्नशील नहीं, वह स्थायी साधक नहीं है। और अपने कल्याण के साथ-साथ जिसको संघ की सुरक्षा अभीष्ट नहीं है, वह आजीवन कार्यकर्त्ता नहीं है।

प्रश्न—आजीवन कार्यकर्त्ता नाम क्यों रखा गया ?

उत्तर--इसलिये कि उसका व्रत है कि मैं संघ की आजीवन सेवा करूँगा, अपना करके मेरा कुछ न होगा, मैं अनुशासन भंग नहीं करूँगा, चरित्र सम्बन्धी दोष नहीं घटने दूंगा। संघ के प्रति जिसकी ईमानदारी से

सद्भावना है, उसको कहाँ फुर्सत है कि वह अपनी सुविधा देखे। वह तो क़ूद पड़ेगा, अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए। साधकों में ऐसा बल आ जाय, मेरा केवल इतना ही प्रयोजन है। उनके लिए, नियम बनाये जायँ, आदेश दिये जायँ, मानव सेवा संघ की यह पद्धति ही नहीं है।

प्रश्न—स्वेच्छा से साधक तैयार हो जाय, इसके लिए क्या करना आवश्यक है ?

उत्तर—घर पर रहते हुए अपनी मांग को बढ़ायें, बस यही करना है। हृदय में यह वेदना बढ़ती रहे कि इस पद्धति को जीवन में उतारना है। मन में यह साध पैदा करें कि मुझे संघ की सेवा का सामर्थ्य दो, साधन-निर्माण का सामर्थ्य दो, समाज की सेवा का सामर्थ्य दो, ऐसी ही शुद्ध भावनाओं को स्थायी बनायें।

प्रश्न—यदि स्थायी साधक का साधन-निर्माण हो जाय और गृहस्थी का कार्य अधूरा रह जाय, तो क्या ऐसे साधक को सेवा के लिए बाहर निकलना चाहिये ?

उत्तर—समाज की सेवा होती है, बिना व्याख्यान दिये भी। यदि साधन-निर्माण हो गया तो अपने कर्तव्य को देखो, अपनी बात को सोचो।

प्रश्न—मांग को सबल बनाने के लिए क्या किया जाय ?

उत्तर—इसके लिए कोई टेकनीक (Technique) नहीं है। मांग पूरी हो सकती है, इसमें अगर कहीं कोई सन्देह है तो समझना चाहिए कि इसके मूल में कोई रूढ़ि बैठी हुई है, जिसका आपको पता नहीं है।

प्रश्न—परस्पर में भिन्नता का कारण क्या है ?

उत्तर—अपने गुण का अभिमान तथा दूसरों के जीवन में दोष दर्शन करना। साधक का पहला व्रत है—अपना दोष तथा दूसरों का गुण देखना। इस अर्थ में वह सत्य का पुजारी है। सत्य के पुजारी को कहाँ फुर्सत है कि वह दूसरे का दोष देखे !

मानव-सेवा-संघ के अनुसार असली ईसाई, असली हिन्दू और असली मुसलमान एक ही चीज है। किसी भी मत, मजहब, सम्प्रदाय का सच्चा अनुयायी होने के लिए उन तथ्यों को अपनाना अनिवार्य है कि जो मानव-सेवा-संघ के आजीवन कार्यकर्त्ताओं के लिए निर्धारित किये गये हैं। उन तथ्यों को अपनाये बिना किसी को भी सफलता नहीं मिल सकती और उन्हें अपनाने वाले सभी साधकों को शान्ति, मुक्ति और भक्ति अवश्य ही मिल

सकती है, जो मानव-जीवन का लक्ष्य है। इस दृष्टि से सभी मतों, मजहबों एवं सम्प्रदायों में एक नवीन चेतना देने वाली संस्था का नाम है—मानव-सेवा-संघ और उस संस्था का सेवक है—संघ का आजीवन कार्यकर्त्ता। इस दृष्टि से मानव-सेवा-संघ का आजीवन कार्यकर्त्ता सर्वहितैषिता, चिरशान्ति, परम स्वाधीनता एवं पवित्र प्रेम का सजीव प्रतीक है।

प्रार्थना

मेरे नाथ !

आप अपनी सुधामयी, सर्व-समर्थ, पतितपावनी, अहैतुकी
कृपा से मानव-मात्र को विवेक का आदर तथा
बल का सदुपयोग करने की सामर्थ्य प्रदान
करें, एवं हे करुणासागर ! अपनी
अपार करुणा से शीघ्र ही राग-
द्वेष का नाश करें, सभी का
जीवन सेवा, त्याग,
प्रेम से परिपूर्ण
हो जाय।

ॐ आनन्द ॐ आनन्द ॐ आनन्द

संघ के ग्यारह नियम

१—आत्म-निरीक्षण, अर्थात् प्राप्त विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।

२—की हुई भूल को पुनः न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वास पूर्वक प्रार्थना करना।

३—विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर, अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर।

४—जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण।

५—दूसरों के कर्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल न मानना।

६—पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव, अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह की एकता।

७—निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से सेवा करना।

८—शारीरिक हित की दृष्टि से आहार-विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन।

९—शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान-शून्य करके अपने को सुन्दर बनाना।

१०—सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्त्व देना।

११—व्यर्थ-चिन्तन त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाना।